श्रीसुशीलकुमार दिवाकर
एम० ए०, बी० काम०, एल-एल० बी०

काव्य में अध्यात्म

जबकि पश्चिमी सभ्यता ने अपनी उन्नति की नींव और कलश पर जड़-वादिता का संस्कार डाला है, तब भारत ने भौतिकता की दृष्टि से पीछे होते हुए भी अध्यात्म की निरन्तर साधना की है. इस आध्यात्मिकता में ही जीवन की महानता और अमूल्यत्व निहित है. भारत-मन्दिर में आध्यात्मिकता का चित्ताकर्षक गीत निरन्तर गाया जा रहा है. यह भारतीय अध्यात्म का ही प्रभाव है कि हमने पाश्चात्य विद्वानों के लिए पूर्ण-रूपेण अज्ञात आत्मा के अनंत गुणों का पता पाया है. आत्मा जो अदृश्य और केवल अनुभवगम्य है, भारतीय महर्षियों द्वारा देखी गई और पहचानी गई. जब पाश्चात्य दार्शनिक कार्लाइल सदृश विद्वान् यह कहकर सन्तुष्ट हो गये कि 'मैं क्या हूं' इसकी चिंता छोड़कर 'मुझे क्या करना है' पर ही विचार करना चाहिये, तब भारतीय महात्माओं और सर्वज्ञों ने आत्मा का पता लगाया. उनके इस आत्मदर्शन में उनका त्याग, ज्ञान, निःस्पृहता, ध्यान, तप, वैराग्य, अपरिग्रह, अहिंसा आदि पारस्परिक पर्यायवाची, सद्-गुणों का अवस्थित रहना अत्यन्त महत्त्व का है.

उन महावीर, बुद्ध, प्रभृति महान् व्यक्तियों के समतादायक शुभ मार्ग को संस्कृत, पाली और प्राकृत के आचार्यों ने जनता तक पहुंचाने का सफल प्रयत्न किया. भारतीय विद्वानों ने अपने विशुद्ध जीवन के आधार पर सफल लेखनी द्वारा लोक-प्रिय भाषा में जनरंजन और जनहित के लिए असंख्य काव्यों की रचना की. न केवल रचना की. वरन् उन गीतों को गाकर जन-जन की हृत्तन्त्री पर स्पष्ट प्रभाव अंकित कर पवित्रता की ओर उन्मुख कर दिया. भारतीय जीवन में 'सन्तोष धन' की आवाज उन्हीं विद्वानों ने बुलन्द की. महाराष्ट्र के कवियों ने तानाजी मालसुरे की सेना में वीर-काव्य गाकर जिस प्रकार ओज और जोश भरा, भूषण के रस से प्रभावित छत्रसाल और शिवाजी ने जिस प्रकार उत्साह पाया, उससे कितना ही अधिक तत्कालीन एवं चिरस्थायी प्रभाव कवियों का भारतीय जीवन की दार्शनिकता पर पड़ा. लोक-भाषा हिन्दी के कवियों ने भी इस ओर कम प्रयत्न नहीं किये. तुलसी ने जगमोह त्याग, काव्यकला की उपासना कर अध्यात्म की ओर ही अपनी प्रतिभा-शकट को मोड़ा. यह बात तो कथानक के अनुसार ही हो गई कि राम का चरित्र-गान करने के लिए, उन्हें 'मानस' में यदाकदा शृंगार का भी आश्रय, 'तिरछे करि नयन दे सैन जिन्हें समझाय चली, मुसकाय चली' आदि के रूप में लेना पड़ा. कविवर बनारसीदास के बारे में उनके 'अर्धकथानक' काव्य से पता लगता है कि वे पहले शृंगारी कवि थे, परन्तु बाद में वे चेते और जब उन्हें यह आभास हुआ कि शृंगार-काव्य से न केवल अपना अहित कर रहे हैं वरन् आगे आने वाली अगण्य पीढियों को स्खलित मार्ग दिखा रहे हैं, तो उन्होंने अपना समस्त शृंगार-काव्य गोमती नदी में डुबाकर सन्तोष की सांस ली. देखिये—

एक दिवस मित्रन्ह के साथ, नौकृत पोथी लीना हाथ,
नींद गोमती के बिच आइ, पुल के ऊपरि बैठे जाइ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बांचे सब पोथी के बोल, तब मन में यह उठी कलोल,
एक झूठ जो बोले कोई, नरक जाइ दुख देख सोइ।
मैं तो कल्पित वचन अनेक, कहे झूठ सब साँच न एक,
कैसे बने हमारी बात, भई बुद्धि यह आकसमात।
यह कहि देखन लाग्यो नदी, पोथी डार दइ ज्यों रदी,
तिस दिन सो बानारसी, करै धर्म की चाह।
तजी आसिकी फासिखी, पकरी कुल की राह॥

वैसे ही रत्नावली के सांसारिक शृंगार में उलझा और मदमाता तुलसी व्यावहारिक अध्यात्म में पड़ गया. श्रीकृष्ण के शृंगार में भी उन्होंने अध्यात्म-रहस्य खोजा. सूफी मत के मुसलमान हिन्दी कवियों के बारे में तो यह बड़ी विचित्रता रही है कि प्रगाढ़ शृंगार का वर्णन करते हुए भी वे आध्यात्म खोज रहे हैं. मलिक मोहम्मद जायसी रचित 'पद्मावत' इसका ज्वलंत उदाहरण है. उसमें पद्मावती रानी-स्त्री नायिका में उन्होंने 'इष्टदेवता' की स्थापना की है. अलाउद्दीन आदि 'इष्टदेवता' से दूर करने का प्रयत्न करते हैं. परन्तु 'गोराबादल' सद्गुणों की सहायता से आत्मदेव भीमसिंह इष्ट-प्राप्ति में समर्थ होते हैं. जायसी का 'माहिका हंसेसि कोहरिहि' उनकी अटूट ईश्वर-भक्ति का परम परिचायक है. अपनी स्वाभाविक शैली से गंभीर रहस्यों का उद्घाटन करते हुए उन्होंने सांसारिक प्रेम का दिग्दर्शन कराया है.

एक कवि ने केवल शृंगार पर लिख अपनी कलम पर कलंक लगाने वाले कवियों को 'कुकवि' कह उनकी खूब निंदा की है. 'कला के लिए कला' का इससे बढ़कर समर्थ विरोध और किस भाषाप्रणाली का हो सकता है ? यथा—

राग उदय जग अंध भयो, सहजे सब लोकन लाज गंवाई।
सीख बिना नर सीख रहे, वनिता-सुख-सेवन की चतुराई।
तापर और रचे रस काव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई॥
अन्ध असूझन की अंखिया महं, मेलत हैं रज राम दुहाई।
कंचन कुम्भन की उपमा कहि, देत उरोजन को कवि वारे।
ऊपर श्याम विलोकत कै मणि, नीलम की ढकनीं ढक छारै।
यों सत बैन कहैं न कुपण्डित, ये युग आमिष पिण्ड उघारे।
साधुन डार दई मुंह छार, भए इस हेत किन्धौं कुछ कारे।

इसी प्रसंग में इस कवि श्रेष्ठ ने कविनिर्माता विधाता पर कटुतम कटाक्ष किया है. वे लिखते हैं :

हे विधि ! भूल भई तुमते, समझे न कहां कस्तूरी बनाई।
दीन कुरंगन के तन में, तिन दंत धरे करुणा नहीं आई।
क्यों न करी तिन जीभन जे रस-काव्य करें पर को दुखदाई।
साधु अनुग्रह दुर्जन दंड दोऊ सधते; बिसरी चतुराई।

ध्वनित रूप से सभी हिन्दी कवियों ने 'अध्यात्म' पुरस्सर सद्भावना से प्रेरित हो अपनी काव्यकला का परिचय दिया है. सतसई में किशोरियों के केश, कटि, वेणी, भौंह, नयन, नासिका, अधर, कपोल, वस्त्राभूषण आदि का वर्णन करने वाला महाशृंगारी बिहारी भी इसे न भूला और (शायद अपनी पूर्वकृत गल्ती को विचार कर ही) उन्होंने सतसई के अंतिम भाग में 'गम्भीर घाव करने वाले' आध्यात्मिक छंदों का निर्माण किया, यथा—

को छूटचो इहि जाल परि कत कुरंग अकुलात।
ज्यों-ज्यों सुरझि भज्यो चहति, त्यों-त्यों उरझत जात।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बुधि अनुमान प्रमाण सुति, किये नीठि ठहराय।
सुलभ गति परब्रह्म की, अलख लखी नहिं जाय।

बिहारी ने निम्न पद्यांश में तो सांसारिक जीवों को परमात्मा की ओर सम्मुख करने में कितनी सफलतापूर्वक कलम की कला दिखाई है.

भजन कह्यो तासों भज्यो, भज्यो न एकी बार।
दूर भजन जाते कह्यो, सो तू भज्यो गंवार।

इस प्रकार के गम्भीर पद्यों के आधार पर ही तो बिहारी बड़े घमण्ड से यह लिख पाये थे कि—

सत सैंया के दोहरा, अरु नाविक के तीर,
देखत में छोटे लगें, घाव करें गम्भीर।

इस प्रसंग पर राष्ट्रकवि कबीर को कौन भूल सकता है ? उनके निम्न लिखित छन्द कामी और प्रगाढ़ संसारी के भी अंतर-चक्षु खोल देते हैं—

कस्तूरी कुण्डल बसै मृग ढूँढे बन मांहि,
ऐसे घट घट राम हैं दुनियां देखे नाहिं।

पाखंडियों आदि को कबीर की फटकार चेतावनी देती है—

मुंड मुंडाये हरि मिले, सब कोई लेय मुंडाय, बार-बार के मूंडते भेड़ न बैकुंठ जाय।
नाम भजौ तो अब भजौ बहुरि भजौगे कब, हरिहर हरिहर रुंखड़े ईंधन हो गये सब।
कहा चुनावै मेढ़िया लांबी, भीति उसारि, घर तो साढ़े तीन हथ, घनात पौने चारि।
साधु भया तो क्या भया बोले नहीं विचार, हतै पराई आतमा बांधि जीभ तरवार॥

जहाँ हम शास्त्रों की बातों पर एकदम अविश्वास कर लेते हैं, वहां राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की तीर्थंकर महावीर के शरीर में दुग्ध सदृश रक्त पर श्रद्धासूचक काव्य देखिए—

यह तनु तोहै रक्तमांसमय, उसमें भरा हुआ है दुग्ध।
बाल्यभाव से ही, जिन, यह जन, आ जाता है हुआ विमुग्ध॥

उनकी 'भारतभारती' में भारतीय आध्यात्मिक पतन और पाश्चात्य भौतिक आगमन पर जो हार्दिक दुःख छिपा है वह एक महान् सन्देश भारतीयों को दे रहा है. जयशंकरप्रसाद ने तो भारतीय-परम्परा में धर्म का कितना सुन्दर चित्रण किया है—

धर्म का ले लेकर जो नाम हुआ करती बलि, करदी बन्द।
हमीं ने दिया शांति सन्देश, सुखी होते देकर आनन्द।
यवन को दिया दया का दान, चीन को मिली धर्म की दृष्टि।
मिला था स्वर्ण भूमिको रत्न, शील की सिंहल को भी सृष्टि।

इस प्रकार भारत ने अपने अध्यात्म-संदेश को देश-देशान्तर में प्रसारित करने का सक्रिय प्रयत्न किया था. हिन्दू-मुस्लिम अनैक्य के दिनों में भी राष्ट्रकवि मैथिलीशरण ने क्या ही तर्कपूर्ण शब्दों में 'गुरुकुल' में स्नेह संवर्धन का प्रयत्न किया है :

हिन्दू हो या मुसलमान, नीच रहेगा फिर भी नीच।
मनुष्यता सबके भीतर है मान्य मही मण्डल के बीच।

मानवता की पावन कल्पना को काव्य में उतारकर कवि ने बड़ा उपकार किया. दौलतराम कवि तो समूचे जीव-तत्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

को ही अध्यात्मयोग के भीतर गर्भित करने लगे. अहिंसा प्रतिपादन में उनका निम्न पद्यांश महत्त्व रखता है :

षटकाय जीव न हनन ते, सब विधि दरब हिंसी टरी ।"

क्योंकि बनारसी के शब्दों में छोटे बड़े जीव सब एक हैं, यथा :

ज्ञान नयन तें देखिए दीन हीन नहिं कोई ।

अतः दौलतराम आगे बढ़ते हैं. वे संसार के चक्र में भौतिकता अर्थात् मिथ्याभाव में उलझे हुए प्राणी को संतोष, सुख अर्थात् निराकुलता का वास्तविक मार्ग इन शब्दों में दिखा रहे हैं—

आतम को हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये ।
आकुलता शिव मांहि न ताते शिव मग लाग्यो चहिये ।।

इस शिव-मग में ही शाश्वत कल्याण होगा. न कि पश्चिमी भौतिकता-प्रचुर मिथ्यापूर्ण, असंतोषदायक जड़ता में. भला कोयला, लोहा और सीमेन्ट आदि जड़ चीजें चैतन्यपुंज आत्मा को क्या दे सकती हैं ? हां, जड़ता अवश्य दे सकेंगी. इसीलिए तो अनन्त निधिधारी मानवात्मा आज जड़वादी अथवा जड़ बनता जा रहा है. उसकी बुद्धि पर परदा पड़ गया है. वह जगन्मिथ्यात्व में भूलकर अपनी अमूल्य मानव पर्याय को यों ही जड़ वस्तुओं की साधना में नष्ट कर रहा है. अतः दौलतराम जी अपनी "अनुप्रेक्षाचिंतन" में उसे जताते हुए लिखते हैं :

"यौवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी ।
इन्द्रीय भोग छिन-थाई, सुरधनु चपला चपलाई ।
सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दलेते ।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई ।।
चहुं गति दुख जीव भरे हैं, परिवर्तन पंच करे हैं ।
सब विधि संसार असारा, तामे सुख नाहिं लगारा ।
शुभ अशुभ करम फल जेते, भोगे जिय एकहिं तेते ।
सुत दारा होय न सीरी सब स्वारथ के हैं भीरी ।
जल-पय ज्यों जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला ।
ये तो प्रकट जुदे धन धामा क्यों हो इक मिल सुत-रामा ।
पल रुधिर राध मल थैली, कीकस बसादि तैं मैली ।
नव द्वार बहै घिनकारी असि देह करें किम यारी ।

इस प्रकार मिथ्यात्व और आत्यन्तिक जागतिकता से हमें सचेत कर हिन्दी के सुकवियों ने भारतीय जीवन में संतोष आदि सद्गुणों का अविच्छिन्न साम्राज्य फैलाया है.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org